भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकल्पनाएं

सम्पादक : डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण
प्रथम 2025

ISBN : 978 - 81 - 993854 - 7 - 4

मूल्य - 300/-

रचना -
भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक -
डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

आवरण -
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक -
श्री श्याम ऑफसेट, किशनगढ़

राष्ट्रीय आंदोलन और शहीद भगत सिंह

राहुल कुमार
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। 20वीं शताब्दी के आरम्भ में जब भारतीय समाज अंग्रेजी शासन की कठोर नीतियों से त्रस्त था, तब देश के नवयुवकों के हृदय में स्वतंत्रता प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा जागृत होने लगी। यद्यपि 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम असफल रहा, किन्तु उस महाविद्रोह ने भारतीय जनमानस को ब्रिटिश शासन के विरोध के लिए तैयार करने में अमिट भूमिका निभाई। इसी पृष्ठभूमि में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का भारतीय नवजागरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज ने सामाजिक और धार्मिक सुधारों के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना का भी शंखनाद किया। दयानन्द ने वेदों की ओर लौटने का आह्वान करते हुए स्वराज्य की परिकल्पना प्रस्तुत की, जिसने भारतीयों के मन में प्राचीन गौरव तथा आत्मविश्वास का संचार किया। यही प्रेरणा आगे चलकर क्रान्तिकारी आन्दोलन की आधारभूमि बनी।

क्रान्तिकारी गतिविधियों का वास्तविक सूत्रपात महाराष्ट्र से हुआ। यहाँ के समाज में शिवाजी की परम्परा और लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं की प्रेरणा ने युवाओं को अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की ओर अग्रसर किया। सर्वप्रथम वासुदेव बलवंत फड़के ने संगठित आतंकवाद का स्वरूप दिया। उन्होंने ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने की योजना बनाई और पूना में अपने व्याख्यानों द्वारा जनता को शासन की क्रूरता एवं शोषण के विरुद्ध जाग्रत किया। वे मानते थे कि अंग्रेजी सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों का विरोध करना भारतीय जनता का नैतिक कर्तव्य है।

फड़के ने धन संग्रह हेतु डकैतियों और सरकारी खजानों को लूटने की योजनाएँ बनाईं। मार्च 1879 में उन्होंने एक घोषणा-पत्र जारी कर अंग्रेजों की शोषणकारी नीति का विरोध किया और अपनी मांगों को मानने के लिए प्रशासन पर दबाव बनाया। इस प्रकार फड़के को भारत का प्रथम क्रान्तिकारी कहा जाता है, जिसने भविष्य के सशस्त्र आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया। फड़के के प्रयत्नों की परिणति चापेकर बन्धुओं की

वीरता में हुई। दामोदर और बालकृष्ण चापेकर ने 22 जून 1897 को पूना के अत्याचारी अधिकारियों—मि. रेण्ड और एयर्स्ट की हत्या कर दी। उनका उद्देश्य नवयुवकों में शौर्य और बलिदान की भावना जगाना था। वे गणपति एवं शिवाजी उत्सवों के अवसर पर देशभक्ति गीतों और भाषणों के माध्यम से जनता को राष्ट्रीय संघर्ष में प्रवृत्त करते थे।

दामोदर चापेकर को गिरफ्तार कर 9 अगस्त 1897 को जेल में डाल दिया गया। उन्होंने अपने अपराध को स्वीकार किया और अन्ततः 18 अप्रैल 1898 को यरवदा सेन्ट्रल जेल में उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया। बाद में बालकृष्ण चापेकर भी पकड़े गये और उन्हें भी मृत्युदण्ड दिया गया। इस प्रकार चापेकर बन्धु भारत की क्रान्तिकारी परम्परा में प्रथम शहीद कहलाए।

इन घटनाओं ने महाराष्ट्र ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत के नवयुवकों के हृदय में क्रान्तिकारी चेतना का संचार किया। यह वही चेतना थी, जिसने आगे चलकर बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो घोष, अनुशीलन समिति, युगान्तर, गदर पार्टी तथा भगतसिंह-चन्द्रशेखर आजाद जैसे महापुरुषों को जन्म दिया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को नयी दिशा प्रदान की।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बंगाल का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। यहाँ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुप्त क्रान्तिकारी संगठनों की स्थापना होने लगी। वर्ष 1876 में 'चुपामुहाफत' नामक गुप्त संगठन का गठन किया गया जिसने बंगाल के नवयुवकों में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। इसके बाद 1902 में कलकत्ता में अनुशीलन समिति की स्थापना हुई जिसके अध्यक्ष प्रमथनाथ मित्र थे। इस समिति के माध्यम से बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन ने संगठित स्वरूप ग्रहण किया। इस आन्दोलन से अनेक महान क्रान्तिकारी जुड़े—जिनमें जतीन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय, चितरंजन दास, श्री अरविन्द घोष, पं. सखाराम गणेश देउस्कर, विपिनचन्द्र पाल, वारीन्द्र कुमार घोष आदि प्रमुख थे। समिति ने 1906 में 'युगान्तर' नामक पत्रिका प्रकाशित की। इसके सम्पादक भूपेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई) थे। युगान्तर के क्रान्तिकारी लेखों ने अंग्रेजी शासन को चुनौती दी, जिसके कारण 1907 में दत्त को दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतना पड़ा।

बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन में 1908 की घटना विशेष उल्लेखनीय है। इस वर्ष खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने मुँजफ्फरपुर के मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की गाड़ी पर बम फेंका। यद्यपि किंग्सफोर्ड बच निकला, किन्तु दो यूरोपीय महिलाओं की मृत्यु हो गई। इसके परिणामस्वरूप खुदीराम बोस को 1908 में फाँसी दे दी गई और प्रफुल्ल चाकी ने गिरफ्तारी से बचने के लिए स्वयं को गोली मारकर आत्महत्या कर ली। इन बलिदानों ने बंगाल के युवकों में अदम्य साहस और क्रान्तिकारी उत्साह का संचार

किया।

1910 में हावड़ा षड्यन्त्र केस के अंतर्गत जतीन्द्रनाथ मुखर्जी को गिरफ्तार किया गया। बंगाल की इन घटनाओं ने अंग्रेज़ी प्रशासन को गहरे रूप से विचलित किया। पंजाब के गवर्नर सर इबटसन ने 1907 की अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि "देश के कोने-कोने में लोग एक नये वातावरण को अनुभव कर रहे हैं। युगान्तर जैसी पत्रिकाएँ प्रतिदिन हजारों लोगों के बीच ज़हर घोल रही हैं और अलीपुर व ढाका षड्यन्त्रकारी संगठन अपनी योजनाएँ बना रहे हैं।"

"Everywhere people were sensible of a change, of a new air which is blowing through men & minds and were waiting to see what would came of it. It will be remembered that at this time the Jugantar and similar publications were daily pouring for the their the posion mong thousand in Bengal, while the Alipore and Dacca conspirators were laying their plans, recruting their ranks and collecting their weapons. It is not surprising that simultane our new ideas would be permiting in India."

इसी समय पंजाब में भी क्रान्तिकारी चेतना का उदय हुआ। 1907 में भारत सचिव मॉरले ने संसद में कहा कि पंजाब में लगभग 23 सभाएँ शुद्ध क्रान्तिकारी स्वरूप की आयोजित की गईं। रावलपिंडी के दंगों ने इस प्रवृत्ति को और भी गति प्रदान की। लाला हरदयाल ने लाहौर और दिल्ली में युवकों को संगठित किया। उनके साथ अमीरचन्द, दीनानाथ और अन्य क्रान्तिकारियों ने नवयुवकों को प्रशिक्षण प्रदान किया। रासबिहारी बोस ने 'लिबर्टी' नामक पर्चे प्रकाशित किए और बम निर्माण की शिक्षा दी।

बुद्धदेव भट्टाचार्य ने अपने लेखों में उल्लेख किया है कि उस समय के क्रान्तिकारियों को गीता और प्राचीन शास्त्रों से प्रेरणा मिली। वे गीता के कर्मयोग और त्याग की भावना से ओतप्रोत होकर राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति देने को तत्पर हो गए।

इस प्रकार बंगाल और पंजाब दोनों प्रदेशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन ने 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में अंग्रेजों के विरुद्ध एक संगठित और प्रखर चुनौती प्रस्तुत की। यही आन्दोलन आगे चलकर गदर पार्टी, हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन तथा भगतसिंह और चन्द्रशेखर आज़ाद जैसे वीर सेनानियों की प्रेरणा का स्रोत बना।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के उस जागरण काल में, जब बंगाल और पंजाब में क्रान्तिकारी चेतना प्रखर रूप से फैल चुकी थी, उसी समय का एक अनुपम फलस्वरूप भगतसिंह का उद्‌भव हुआ। वे पंजाब के जाट परिवार से थे। इनके दादा सरदार अर्जुनसिंह को उनके समय का 'क्रान्ति का अरुणोदय' कहा जाता था। वे महर्षि दयानन्द

सरस्वती के उपदेशों से गहरे प्रभावित थे और आर्य समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक सुधारों को जीवन में उतार चुके थे। यही नहीं, भगतसिंह की दादी श्रीमती जयकौर भी प्रगतिशील विचारों वाली महिला थीं। जब भगतसिंह और उनके भाई जगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, तब उन्होंने दोनों को देश के लिए न्यौछावर कर देने का संकल्प लिया। यह पारिवारिक संस्कार आगे चलकर भगतसिंह के जीवन का मूलाधार बना।

भगतसिंह के पिता सरदार किशन सिंह ने महात्मा हंसराज से आर्य समाज की प्रेरणा प्राप्त की और लाला लाजपत राय के साथ मिलकर राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रहे। इस प्रकार जिस घर में भगतसिंह का जन्म हुआ, वहाँ का वातावरण आर्य समाजी विचारों, सुधारवादी परम्पराओं और राष्ट्रीय जागरण की भावना से ओतप्रोत था। उनकी माता विद्यावती देवी ने भी इस परम्परा को पोषित किया और अपने पुत्रों में राष्ट्रप्रेम का संस्कार भरा।

प्रारम्भिक शिक्षा के लिए भगतसिंह को लाहौर के डी.ए.वी. स्कूल (दयानन्द ऐंग्लो वैदिक विद्यालय) में भेजा गया। इस विद्यालय ने उनके विचारों को आर्य समाजी परिप्रेक्ष्य में ढालने का कार्य किया। इसके बाद उन्हें लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित नेशनल कॉलेज, लाहौर में प्रवेश दिलाया गया। यहाँ भाई परमानन्द, भगवतीचरण बोहरा, जयचन्द्र विद्यालंकार, सुखदेव और यशपाल जैसे क्रान्तिकारी विचारक और साथी उन्हें मिले। इन शिक्षकों और मित्रों ने उन्हें राजनीतिक शिक्षा, संगठन कौशल और क्रान्तिकारी मागज़ का वास्तविक परिचय कराया।

आर्य समाज की प्रेरणा उनके जीवन के सूक्ष्मतम व्यवहार में परिलक्षित होती थी। वे अपने कार्ड और पत्रों के ऊपर '**ओ३म**' लिखते थे। संस्कृत भाषा के प्रति उनका गहरा अनुराग भी इसी संस्कार का परिणाम था। एक परीक्षा में उन्होंने संस्कृत में 150 में से 110 अंक प्राप्त किए, जबकि अंग्रेजी में केवल 68 अंक ही आए। उन्होंने मुस्कुराते हुए अपने दादा से कहा—''पास होने के लिए तो 50 नम्बर ही काफी थे, मैंने 68 लेकर अच्छी तरह पास कर लिया।'' यह प्रसंग उनके आयज़ समाजी संस्कार, संस्कृत प्रेम और आत्मविश्वास का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार बचपन से ही भगतसिंह क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत हो उठे। दादा अर्जुनसिंह की परम्परा, पिता किशन सिंह और लाला लाजपत राय जैसे राष्ट्रीय नेताओं का वातावरण, माँ विद्यावती का त्यागमय संस्कार और आर्य समाज की क्रान्तिकारी चेतना—इन सबने मिलकर उनके व्यक्तित्व का निर्माण किया। यही कारण है कि वे धीरे-धीरे भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के अग्रदूत बने और आने वाली पीढ़ियों के लिए अमर आदर्श।

डॉ. रघुवीर सिंह का यह कथन पूर्णत: सारगर्भित है कि—''पंजाब के उस दौर के

सभी नेता आर्य समाज के सुधारवादी आन्दोलन से अछूते न थे। भगतसिंह का पूरा परिवार भी आर्य समाज की प्रगतिशील भूमिका से प्रभावित था।'' वास्तव में भगतसिंह के व्यक्तित्व का प्रारम्भिक आधार उनके परिवार से प्राप्त आर्यसमाजी संस्कार थे। वे पत्रों पर 'ओ३म्' लिखते थे और संस्कृत भाषा के प्रति विशेष अनुराग रखते थे। किन्तु यह भी सत्य है कि उनका जीवन केवल संस्कारों पर नहीं, वरन् विचारों पर आधारित था।

वे उन परम्पराओं को ही स्वीकार करते थे, जो उनकी तार्किक विचारधारा के अनुकूल बैठती थीं। जहाँ उनका परिवार आस्तिक प्रवृत्ति का था, वहीं भगतसिंह जीवन के उत्तरार्द्ध में नास्तिक विचारधारा को अपनाकर आगे बढ़े। इस प्रकार शिक्षा और चिन्तन ने उनके संस्कारों को नये सिरे से गढ़ा—जिससे वे केवल परम्परा के अनुयायी नहीं, बल्कि स्वयं नये संस्कारों और विचारों के प्रेरणा-स्रोत बन गये।

विदेशों में सक्रिय गदर पार्टी के क्रान्तिकारियों के कार्यों ने भगतसिंह को गहरे रूप से प्रभावित किया। उन्होंने देखा कि भारतीय युवक, परदेश में रहकर भी अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए बलिदान दे रहे हैं। यही बीज आगे चलकर उनकी क्रान्तिकारी चेतना में अंकुरित हुआ। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था— ''दोस्तो, यदि मेरा विवाह गुलाम भारत में होना है, तो मेरी वधु केवल मौत होगी। बारात जुलूस के रूप में होगी और बाराती देश के लिए मर मिटने वाले परवाने होंगे।'' यह कथन उनके जीवन के आदर्शों और त्याग-भावना का साक्षात् दर्पण है।

युवाओं को संगठित करने के लिए भगतसिंह ने नौजवान भारत सभा की स्थापना की। इस सभा के वे महासचिव बने और प्रचार का कार्य भगवतीचरण बोहरा को सौंपा गया। अमृतसर अधिवेशन में इस संगठन ने युवा शक्ति को राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा में प्रवृत्त करने के संकल्प लिए। यह सभा युवाओं में राष्ट्रीयता, त्याग और समाजवाद की भावना भरने का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गई।

भगतसिंह के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे श्रेय संगठन को देते थे और उत्सर्ग स्वयं का करते थे। यही कारण है कि वे व्यक्तिगत नायकत्व से अधिक सामूहिक क्रान्तिकारी चेतना के निर्माण पर बल देते थे। शचीन्द्रनाथ सान्याल की प्रेरणा से 1923 में हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन का नाम बदलकर हिन्दुस्तानी सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन रखा गया। यह परिवर्तन 1925 में भगतसिंह की सलाह से हुआ था। 1928 में इस संगठन के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया, जिसके अंतर्गत क्रान्तिकारी गतिविधियों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ-साथ समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का स्वप्न भी देखा गया।

भगतसिंह एक कुशल संगठनकर्ता थे। वे केवल योजना बनाने में ही नहीं, बल्कि उसे क्रियान्वित करने में भी अग्रणी रहते थे। वे काकोरी काण्ड के शहीद राजेन्द्र लाहिड़ी

से अत्यन्त प्रभावित थे। इतना कि उन्होंने अपने छोटे भाई का नाम 'राजेन्द्र' रखा। वे काकोरी काण्ड के नायक रामप्रसाद बिस्मिल को जेल से छुड़ाने के लिए दिन-रात प्रयत्नशील रहे, यद्यपि यह प्रयास सफल न हो सका।

इस प्रकार भगतसिंह ने अपने जीवन से यह सिद्ध कर दिया कि क्रान्तिकारी आन्दोलन केवल भावनाओं का ज्वार नहीं, बल्कि विचारों, संगठन और त्याग का संगम है। उन्होंने व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से ऊपर उठकर सामूहिक क्रान्तिकारी आन्दोलन को नया दर्शन दिया और युवाओं के लिए आदर्श बन गए।

साइमन कमीशन के भारत आगमन ने स्वतंत्रता संग्राम को एक नया मोड़ दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सर्वसम्मति से इसके बहिष्कार का निर्णय लिया, क्योंकि इसमें किसी भी भारतीय सदस्य को सम्मिलित नहीं किया गया था। इस निर्णय के परिणामस्वरूप संपूर्ण देश में आक्रोश की लहर दौड़ गई। पंजाब में जब कमीशन का विरोध हुआ तो लाहौर की सड़कों पर स्वयं शेर-ए-पंजाब लाला लाजपत राय ने जनता का नेतृत्व किया।

लाहौर की धरती उस दिन ब्रिटिश अत्याचार की गवाह बनी। अंग्रेज पुलिस अफसर जेम्स ए. स्कॉट के आदेश पर शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर निर्मम लाठीचार्ज किया गया। लाठियों की चोट से घायल लाला लाजपत राय ने अंततः प्राण त्याग दिए और वे देश के लिए शहीद हो गए। उनकी शहादत ने भारतीय जनमानस को आंदोलित कर दिया।

युवक क्रांतिकारियों के लिए यह केवल एक अपमान नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सम्मान पर सीधी चोट थी। नौजवान भारत सभा के अंतर्गत संगठित क्रांतिकारी दल ने प्रतिज्ञा की कि लालाजी की शहादत व्यर्थ नहीं जाएगी। इस संदर्भ में डॉ. रघुवीर सिंह ने ठीक ही लिखा है— ''क्रांतिकारी दल के सामने यह सवाल उसी दिन से अहम बना हुआ था जिस दिन से लालाजी की मृत्यु हुई थी। पूरा देश इस अपमान से अधीर हो उठा। भगतसिंह और उनके साथी, साम्राज्यवादी दरिन्दों ने राष्ट्रीय स्वाभिमान और गौरव पर जो अपमानजनक चोट की थी, का बदला लेने एवं 'बसन्ती देवी की चुनौती' को स्वीकार करने के लिए आगे आये।''

यहां यह उल्लेखनीय है कि बसंती देवी—प्रसिद्ध नेता चितरंजनदास की पत्नी ने लाहौर की एक शोकसभा में देश के युवकों को लालाजी की मौत का बदला लेने की खुली चुनौती दी थी। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव और जयगोपाल ने प्रतिशोध की योजना बनाई। उनका लक्ष्य था—लाठीचार्ज का आदेश देने वाले पुलिस अफसर स्कॉट को समाप्त करना। किन्तु

त्रुटिवश स्कॉट के स्थान पर असिस्टेंट पुलिस सुपरिटेंडेंट जे. पी. साण्डर्स मारा गया। यह घटना यद्यपि योजनानुसार नहीं थी, किन्तु उसने समूचे देश में आग की तरह संदेश पहुँचा दिया कि क्रांतिकारी युवकों ने लाला लाजपत राय की शहादत का बदला ले लिया है। इस कार्रवाई की घोषणा लाल इश्तिहार के माध्यम से की गई।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस घटना के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा— ''इस तरह भगतसिंह ने अपने हिंसात्मक कार्य के लिए लोकप्रियता प्राप्त नहीं की, बल्कि इसलिए प्राप्त की कि कम से कम उस समय लोगों को ऐसा मालूम हुआ कि उसने लालाजी और लालाजी के रूप में कौम की इज्जत रखी है।''

इस प्रकार भगतसिंह केवल एक क्रांतिकारी नहीं रहे, बल्कि प्रतिकार और सम्मान के प्रतीक बन गए। उनकी इस साहसिक कार्रवाई ने जनमानस में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध आक्रोश को और तीव्र कर दिया। स्पष्ट है कि भगतसिंह की शहादत और उनकी कार्यवाहियों ने आम जनता के हृदय में स्वतंत्रता की अग्नि को और अधिक प्रज्वलित किया।

असेम्बली बमकाण्ड भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का ऐसा अध्याय है, जिसने न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में क्रांतिकारी आंदोलन को नई पहचान दी। उस समय ब्रिटिश सरकार ने पब्लिक सेफ्टी बिल और ट्रेड डिस्ट्रीब्यूट्स बिल को पारित कराने का निश्चय किया था। इन दोनों विधेयकों का उद्देश्य स्पष्ट था—जनजागरण की लौ को दबाना और राष्ट्रीय आंदोलनों को कुचल देना।

भगतसिंह और उनके साथियों ने निश्चय किया कि इस दमनकारी नीति का उत्तर केवल वैधानिक मार्ग से देना पर्याप्त नहीं है। उन्होंने निर्णय लिया कि असेम्बली में बम फेंका जाए, किंतु यह कार्य किसी की जान लेने के लिए नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक विरोध के लिए हो। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि बम फेंकने के बाद भागने की बजाय वे स्वेच्छा से गिरफ्तारी देंगे और न्यायालय में अपने विचारों को निर्भीकता से प्रस्तुत करेंगे।

इस विषय पर यशपाल ग्रोवर ने लिखा है कि हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संगठन (हि.स.प्र.स.) ने यह ठाना कि बम फेंककर सरकार के दमनकारी व्यवहार का प्रतिकार किया जाए। इसके दो पहलू थे—

(1) विदेशी सरकार को यह चुनौती देना कि यदि वह प्रजा के प्रतिनिधियों की इच्छा के विपरीत केवल बल के आधार पर शासन कर रही है, तो उसका उत्तर भी शस्त्र-बल से दिया जाएगा।

(2) वैधानिक आंदोलन चलाने वाले भारतीय नेताओं को यह चेतावनी देना कि मात्र वैधानिक विरोध से कुछ हासिल नहीं होगा, क्योंकि अंग्रेजी शासन दमनकारी कानून बनाने से नहीं रुकने वाला। ऐसे में उस वैधानिकता के मुखौटे को उतार फेंकना

आवश्यक है।

8 अप्रैल 1929 का दिन इस निर्णय का गवाह बना। जैसे ही वित्त सदस्य जॉर्ज शुस्टर ने विधेयकों की स्वीकृति की घोषणा की, भगतसिंह ने उनकी ओर बम फेंका। उसके तुरंत बाद बटुकेश्वर दत्त ने भी बम फेंका। सभागार गूंज उठा क्रांतिकारी नारों से— इंकलाब जिंदाबाद! (Long Live Revolution!), साम्राज्यवाद का नाश हो! (Down with Imperialism!), दुनिया के मजदूरो, एक हो! (Workers of the world, Unite!) साथ ही क्रांतिकारी पर्चे भी बांटे गए। उल्लेखनीय है कि हिन्दुस्तान टाइम्स के प्रतिनिधि दुर्गांदास ने ये पर्चे सभागार से बाहर तक पहुंचाए। घटना के बाद भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त भागे नहीं, बल्कि वहीं खड़े रहकर नारे लगाते हुए पुलिस के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। यही उनके साहस और आदर्श का सबसे बड़ा प्रमाण था।

यह घटना केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व भर में चर्चा का विषय बनी। पहली बार जनता के सामने यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय क्रांतिकारी केवल शब्दों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि अपने विचारों को कर्म में परिणत करने और आवश्यकता पड़ने पर प्राण तक बलिदान करने के लिए तैयार हैं।

गिरफ्तारी के बाद न्यायालय में भगतसिंह का ऐतिहासिक वक्तव्य और भी क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है— ''क्रांतिकारियों ने इसके पहले बयान दिये थे और उससे काफी सनसनी पैदा हुई थी, और जनता की प्रशंसा भी उन्हें मिली थी, किन्तु सरदार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने जो बयान दिया था, उसकी अपील सिर्फ हृदय के प्रति नहीं, बल्कि लोगों के दिमाग में थी। इसके पहले किसी भी क्रांतिकारी ने अदालत में खड़े होकर इतना विद्वतापूर्ण बयान नहीं दिया था।''

इस कथन से स्पष्ट होता है कि भगतसिंह केवल जोशीले क्रांतिकारी ही नहीं थे, बल्कि गहन वैचारिक और बौद्धिक क्षमता से संपन्न राष्ट्रनायक भी थे। उनकी वाणी में ओज था, पर साथ ही उसमें तकज़ और विचार की गहराई भी थी।

जेल में रहते हुए उन्होंने कैदियों के अधिकारों की लड़ाई लड़ी और भूख हड़ताल कर दी। यह हड़ताल क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में मील का पत्थर बनी। 12 जून 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को आजीवन काले पानी की सजा सुनाई गई। परंतु इन वीरों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके पश्चात लाहौर षड्यंत्र केस में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी की सजा दी गई। और अंततः 23 मार्च 1931 को तीनों क्रांतिकारी हँसते-हँसते फांसी के फंदे पर झूल गए।

यह उल्लेखनीय है कि भगतसिंह ने प्रिवी काउंसिल में अपील करने का निश्चय भी किया था, ताकि अदालत में अपने विचार रखकर और अधिक युवाओं को स्वतंत्रता

के लिए जाग्रत किया जा सके। गांधीजी ने भी लार्ड इरविन से इन तीनों की फांसी रोकने के लिए वार्ता की, किन्तु ब्रिटिश शासक अपने निर्णय पर अडिग रहे।

पट्टाभिसीतारमैया के शब्दों में— ''गांधीजी ने इन तीनों को फांसी से बचाने के लिए लार्ड इरविन से विस्तृत वार्ता भी की थी। लेकिन वायसराय पर इसका असर नहीं पड़ा था।''

इस प्रकार भगतसिंह और उनके साथियों की शहादत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अमर गाथा बन गई, जिसने आने वाली पीढ़ियों को सदैव प्रेरित किया।

दुर्गा भाभी (दुर्गावती देवी), जिन्हें क्रांतिकारी आंदोलन की अग्रणी महिला के रूप में जाना जाता है, ने अपने एक साक्षात्कार में उस समय की स्मृति को व्यक्त करते हुए कहा था— ''गांधीजी से मिलने का मौका तब मिला जब भगतसिंह को फाँसी हुई थी। मुझसे कहा गया कि मैं उनसे कहूँ कि पॉलीटिकल प्रिजनर्स के मसले को भी अपनी वार्ता में उठायें। दिल्ली में डॉ. अन्सारी की कोठी में गांधीजी ठहरे हुए थे। सुशीला दीदी और मैं गये थे.........गांधीजी ने समझा कि हम शायद इसलिये आये हैं कि हमसे फरार लाइफ की मुसीबत झेली नहीं जाती, हमें मुक्ति दिलायें। तो मुझे जरा फील भी हुआ। मैंने कहा.........हम इसलिये आये हैं कि भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरु को फाँसी हो रही है। उन्होंने कहा कि वे तो हिंसा में विश्वास रखते हैं और यह है, वह है, और हम लोग चले आये।''

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि महात्मा गांधी ने भगतसिंह और उनके साथियों के लिए प्राणदण्ड माफी हेतु कोई विशेष दबाव नहीं डाला। इसका प्रमुख कारण था— उनकी अहिंसावादी नीति और क्रांतिकारियों की हिंसात्मक गतिविधियों के बीच का मौलिक अंतर। स्वयं लार्ड इरविन की डायरी भी यह प्रमाणित करती है कि जब उन्होंने गांधीजी से कहा कि वह सजा कम नहीं कर सकते, तो गांधीजी ने उनके तर्क को स्वीकार कर लिया था।

यह तथ्य गांधीजी और भगतसिंह की विचारधाराओं के मूलभूत भिन्नता को उजागर करता है। गांधीजी का विश्वास था कि अहिंसा और सत्याग्रह ही स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त करेंगे, जबकि भगतसिंह मानते थे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को झकझोरने के लिए सशक्त प्रतिरोध और बलिदान आवश्यक है।

फिर भी, भगतसिंह के नेतृत्व की विशेषता यह थी कि उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि क्रांतिकारियों को केवल गुप्त गतिविधियों में नहीं, बल्कि खुले मंच पर जनता के सामने अपने विचार प्रकट करने की आवश्यकता है। इसलिए उन्होंने अदालत और जेल को ही अपना मंच बना लिया और वहां से जनमानस को जगाने का प्रयास किया। उनका नेतृत्व वास्तव में इस वाक्य में समाहित हो सकता है— ''किरण का सूर्य

बन जाना, फल का उपवन बन जाना और घटना का इतिहास बन जाना।''

भगतसिंह के त्याग और बलिदान ने आम जनता पर गहरा प्रभाव डाला। मजदूर वर्ग, युवा छात्र, वकील, यहाँ तक कि कांग्रेस के कार्यकर्ता भी उनके नि:स्वार्थ समर्पण और अद्वितीय साहस से अत्यंत प्रभावित हुए। लाहौर षड्यंत्र केस देश के लिए एक ऐतिहासिक मोड़ साबित हुआ।

जब 23 मार्च 1931 को भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दी गई, तो सम्पूर्ण भारत शोकमग्न हो उठा। उस समय ट्रिब्यून ने ठीक ही लिखा— ''हमारी स्मृति में कोई ऐसा फौजदारी का मुकदमा नहीं है जिसने देश में इतनी अधिक उत्तेजना उत्पन्न की हो और न ही किसी अभूतपूर्व मुकदमे में मृत्युदण्ड कम करने की इतनी तीव्र और इतनी सार्वभौम मांग की गई है।''

निस्संदेह, इन तीनों की शहादत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक अमिट छाप छोड़ गई और वे आने वाली पीढ़ियों के लिए बलिदान, साहस और राष्ट्रप्रेम के शाश्वत प्रतीक बन गए।

सुभाषचन्द्र बोस ने यह स्पष्ट रूप से कहा था कि भगतसिंह की फाँसी की तिथि का हृदय-विदारक क्षण पूरे देश को एक छोर से दूसरे छोर तक झकझोर गया। युवाओं के बीच वे केवल एक क्रान्तिकारी नहीं रहे, बल्कि एक नवीन जागरण और राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक बन चुके थे।

भगतसिंह की शहादत ने लोकमानस को गहराई से आंदोलित कर दिया। उन पर लिखे गए साहित्य, कविताएँ और नाटक विभिन्न भारतीय भाषाओं में इस बात के साक्ष्य हैं कि बुद्धिजीवी वर्ग भी उनके विचारों और दर्शन से अत्यधिक प्रभावित रहा। उनकी बलिदानी भावना ने पूरे देश में उत्सगज् और समर्पण की नई धारा प्रवाहित कर दी। 'इंकलाब जिंदाबाद' और 'भगतसिंह अमर रहें' के नारों ने जन-जन के हृदय में देशभक्ति की ज्वाला को तीव्र कर दिया। इसका प्रमाण 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय इलाहाबाद में देखने को मिला। जब धारा 144 लागू थी, तब भी छात्रों ने काँग्रेस का झंडा हाथों में उठाए रखा। पुलिस की गोलियों से एक के बाद एक छात्र शहीद होते गए, परंतु झंडा धरती पर गिरने नहीं दिया गया। यह वही बलिदानी भावना थी जो भगतसिंह की शहादत से जनमानस में समाहित हो चुकी थी।

ब्रिटिश इंटेलिजेंस ने 1931 की रिपोर्ट में यह स्वीकार किया था कि भगतसिंह और उनके साथियों की शहादत ने आम जनता पर गहरा प्रभाव डाला है और इसका दूरगामी परिणाम अवश्य दिखाई देगा। यही कारण था कि महात्मा गांधी को भी 2 मार्च 1930 को लार्ड इरविन को लिखे गए अपने पत्र में यह स्वीकार करना पड़ा कि क्रान्तिकारी आंदोलन की लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है।

ब्रिटिश सरकार की 5 मार्च 1931 की एक अन्य रिपोर्ट में दर्ज है कि भगतसिंह की गतिविधियाँ पंजाब में प्रदर्शनों की दिशा को लगातार प्रभावित कर रही थीं। यहाँ तक कि स्थानीय काँग्रेस नेता सत्यपाल जैसे वरिष्ठ व्यक्तित्व भी, हत्यारों के पक्ष में होने वाले प्रदर्शनों में सम्मिलित होकर अपनी घनिष्ठता प्रकट कर रहे थे।

निश्चय ही भगतसिंह की शहादत ने आम जनता में आत्मोत्सर्ग की भावना को प्रज्वलित किया। मानवीय अधिकारों के शोषण के विरोध में लोकमानस में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी 6 अगस्त 1929 को लाहौर में, भगतसिंह द्वारा जेल में की गई भूख-हड़ताल के संदर्भ में कहा था— ''इन नौजवानों के त्याग ने हमारे राजनीतिक जीवन में एक नई चेतना उत्पन्न की है और एक बार फिर हम सबके हृदयों में स्वतंत्रता की लालसा को प्रबल कर दिया है।''

नेहरू काँग्रेस की गुटबाजी से क्षुब्ध रहते थे और उन्होंने काँग्रेसजनों से आह्वान किया कि वे इन क्रांतिकारियों के त्याग और उत्सर्ग से प्रेरणा लें। उन्होंने स्वीकार किया कि भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त और उनके साथियों के बलिदान से उनका मन गहराई तक पुलकित होता है।

क्रांतिकारी आंदोलन में भगतसिंह की शहादत एक ऐतिहासिक मील का पत्थर सिद्ध हुई। उनका त्याग और कर्तव्य केवल व्यक्तिगत विद्रोह का परिणाम नहीं था, बल्कि उसमें राष्ट्रभक्ति की उच्चतम भावना और स्वतंत्रता के लिए प्रबल आकांक्षा निहित थी। वे ऐसे व्यक्तित्व थे जिनमें उच्च आदर्शों और राष्ट्रस्वाभिमान की प्रखर ज्योति सदैव प्रज्वलित रहती थी।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने भगतसिंह की फाँसी से उत्पन्न राष्ट्रीय शोक को शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा था— ''यद्यपि मैंने स्वयं को टूटा हुआ महसूस किया है, लेकिन अब सब कुछ समाप्त हो चुका है। हम सभी उसको बचा नहीं सके, जो हमको इतना प्रिय था और उसका अदम्य साहस और बलिदान भारत के नौजवानों के लिए प्रेरणा-स्रोत रहा है। भारत आज अपने लाड़ले सपूतों को भी फाँसी से नहीं बचा सकता। जगह-जगह हड़ताल और शोकाकुल जुलूस निकाले जाएँगे। यह हमारी कोरी असहाय स्थिति का प्रतीक होगा, और जब इंग्लैंड समझौते की बातचीत करेगा तो भगतसिंह की लाश हमारे बीच होगी, जिससे कि हम भूल न जाएँ।''

पं. मदनमोहन मालवीय ने तो यहाँ तक कहा कि भगतसिंह की फाँसी को शब्दों में व्यक्त करना असंभव है।

महात्मा गांधी भले ही क्रांतिकारी आंदोलन और उसकी हिंसात्मक पद्धतियों को उचित नहीं मानते थे, किंतु भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की फाँसी से उनका मन भी अत्यंत आहत हुआ। उन्होंने इन वीर युवकों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए कहा

था— ''उस (भगतसिंह) के साहस की सीमा बाँधना असंभव है। फाँसी ने इन नौजवानों के सिर पर शौर्य का सरताज रख दिया है। इनकी प्रशंसा में जो भी शब्द कहे गए हैं, मैं उनसे पूर्णत: सहमत हूँ। हमें उनकी कुर्बानी, शौर्य और असीम साहस की प्रशंसा करनी चाहिए, भले ही हम स्वयं उनके समान साहस का प्रयोग न कर पाएँ।''

भगतसिंह और उनके साथियों का यह बलिदान केवल एक घटना भर नहीं रहा, बल्कि उसने पूरे राष्ट्र को झकझोर कर रख दिया। समाज में सर्वत्र नई चेतना का संचार हुआ। यहाँ तक कि कम्युनिस्ट पार्टी, जो अपने विचारों और कार्यपद्धति में भिन्न थी, वह भी भगतसिंह के बलिदान से अछूती न रह सकी। राष्ट्रीय स्वाधीनता के महान उद्देश्य से प्रेरित उनकी शहादत ने कम्युनिस्टों को भी गहरे शोक और संवेदना में डुबो दिया।

वास्तव में, भगतसिंह का बलिदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में उस अमर दीपक के समान है, जिसकी ज्योति ने असंख्य युवाओं को जागृत कर दिया और देश की आजादी की राह को आलोकित कर दिया।

ब्रिटिश सरकार भी भगतसिंह के प्राणोत्र्सग से उत्पन्न जनजागृति से अछूती नहीं रह सकी। 26 मार्च, 1931 की सरकारी रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया था— ''भगतसिंह और उसके दो अभियुक्त साथियों को, जिन्हें लाहौर षड्यंत्र केस में मृत्युदंड दिया गया था, की फाँसी भारतीय आतंकवादी आंदोलन के इतिहास में एक मील का पत्थर बन रही लगती है।''

इसी रिपोर्ट में आगे कहा गया कि— ''आजाद और भगतसिंह दो ऐसे नाम हैं जो सदा-सदा के लिए जीवित रहेंगे। भले ही कितनी असंतुष्टता से उनके महत्व को खंडित करने का प्रयास किया जाए, परंतु फिर भी आज वे एक शूरवीर, एक शहीद और भारत माता के महान सुपुत्र के समान प्रतिष्ठित हैं।''

यहाँ तक कि जिस न्यायाधीश ने असेम्बली केस की सुनवाई की थी, उसने भी भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त के कृत्य को राष्ट्र की उत्कृष्ट भावना से प्रेरित माना। न्यायाधीश फोर्ट का वक्तव्य उल्लेखनीय है— ''भगतसिंह वास्तविक रूप में एक ईमानदार क्रांतिकारी है और वह विश्वाास रखता है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को नष्ट करके ही संसार को सुधारा जा सकता है।''

निष्कर्षत: यह स्पष्ट होता है कि भगतसिंह के जेल में किए गए अनशन, न्यायालय में दिए गए उनके विचारोत्तेजक बयानों और अंतत: मिली फाँसी का प्रभाव जन-जन पर गहराई से पड़ा। इस प्रभाव ने न केवल जनता को आंदोलित किया बल्कि ब्रिटिश सरकार को भी हिला दिया। 16 मार्च, 1931 की ब्रिटिश सरकार की गृह विभाग की साप्ताहिक रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया— ''भगतसिंह और उनके साथी आने वाले समय में उत्तेजित उपदेशों के लिए अवश्य ही आधार का कार्य करेंगे।''

निस्संदेह, भगतसिंह ने अपने जीवन और बलिदान के माध्यम से युवाओं के लिए राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम और राष्ट्र के प्रति उत्सर्ग का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। यही कारण था कि उनका प्रभाव केवल क्रांतिकारी आंदोलन तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करने वाला बना। इसका अप्रत्यक्ष लाभ काँग्रेस के राष्ट्रवादी आंदोलन को भी मिला और स्वतंत्रता संग्राम की लहर और तीव्र हो गई।

❑❑❑